RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16, अंक-2, मार्च अप्रैल मई 2023

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-16 अंक - 2 मार्च-अप्रैल-मई-2023

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टिट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** - पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** - प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** - प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** - पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** - पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** - सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** - पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** - आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** - पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

भारतीय ज्ञान परम्परा में नाट्य विद्या के मूल - वेद

राकेश कुमार माली
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

भारतीय नाट्य-परम्परा का आदि-स्रोत वेद हैं, जिन्हें विद्वान ज्ञान के भण्डार के रूप में मानते हैं। वेद न केवल धार्मिक और दार्शनिक तत्त्वों का संकलन हैं, बल्कि इसमें कलात्मक और नाट्यगत तत्त्वों का भी प्राचीन और मौलिक आधार निहित है। प्राचीन भारतीय मतानुसार, वेदों में नाट्य की जड़ें स्पष्ट या प्रतीकात्मक रूप में मौजूद हैं। वेदों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि नाट्य परम्परा के आरंभिक रूप में संवाद, गीत, अभिनय और रस के तत्व वैदिक साहित्य में विद्यमान थे, और इन्हीं तत्वों से नाट्यशास्त्र का विकास हुआ।

आचार्य भरत ने नाट्य को पंचम वेद माना और इसे अन्य चार वेदों के तत्वों का सम्मिश्रित रूप स्वीकार किया। उनके अनुसार, ब्रह्मा ने नाट्य-वेद की सृष्टि करते समय ऋग्वेद से पाठ्यतत्व, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस तत्व ग्रहण किया। इस दृष्टि से नाट्य केवल एक कलात्मक रूप नहीं, बल्कि वेदों के ज्ञान, भाव और दार्शनिक तत्त्वों का समुच्चय है। आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में वर्णित पंचम वेद का सिद्धान्त यह दर्शाता है कि नाट्य का उद्देश्य न केवल मनोरंजन करना था, बल्कि मानव जीवन, भावनाओं, नैतिकता और आध्यात्मिक अनुभूतियों का संचार करना भी था। नाट्य के माध्यम से व्यक्ति को शिक्षा, आचार और समाज के मूल्यों से परिचित कराया जाता था।

वैदिक साहित्य में संवादात्मक सूक्तों और आख्यानों की उपस्थिति नाट्य के प्रारंभिक रूप के प्रमाण स्वरूप है। उदाहरण स्वरूप, ऋग्वेद के दशम मण्डल का दशम सूक्त यम और यमी के संवाद के रूप में है। यह संवाद दार्शनिक विचारों और मानव जाति की उत्पत्ति पर विमर्श करता है। इस सूक्त में व्यक्त दृष्टिकोण केवल तात्त्विक नहीं हैं, बल्कि उनमें भावनात्मक और संवादात्मक रूप भी विद्यमान है, जो नाट्य की नींव रखता है। इसी मण्डल का पुरुरवा-उर्वशी संवाद (10-65) भावनात्मक और नाट्यात्मक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसमें पुरुरवा उर्वशी की चंचलता और प्रेम संबंधी जटिलताओं के माध्यम से भावनाओं की सूक्ष्मता और व्यक्तित्व के द्वंद्व को दिखाया गया है। यह सूक्त दर्शाता है कि वैदिक काल में भी संवाद और अभिनय नाट्य की प्रधानता रखते थे और इन्हीं तत्त्वों से नाट्य की संरचना हुई।

नाट्य के वैदिक मूल के सिद्धान्त को भारतीय आलोचकों के अतिरिक्त अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने भी मान्यता दी है। प्रोफेसर मैक्समूलर, डॉ. विन्टरनित्ज़, प्रो. लूडर्स, बान श्रीएडर, प्रो. सिल्वा सेवी, प्रो. एच. ओल्डनवर्ग, डॉ. हर्टल और ए. बी. कीथ ने विभिन्न शोधों में यह स्पष्ट किया है कि नाट्य की उत्पत्ति वैदिक संवाद-सूक्तों से हुई। ए. वी. कीथ ने लगभग पंद्रह ऐसे संवादात्मक सूक्तों की पहचान की है, जिनमें

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

संवाद और भावनाओं का समन्वय नाट्य की प्रारंभिक रूपरेखा प्रस्तुत करता है।

ऋग्वेद में अनेक सूक्त ऐसे हैं जिनमें संवादात्मक रूप स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है और ये सूक्त न केवल धार्मिक या दार्शनिक तत्त्व प्रस्तुत करते हैं, बल्कि नाट्यात्मक भाव और अभिनय की संभावनाओं को भी प्रकट करते हैं। ऋग्वेद का 1.176 सूक्त अगस्त्य और लोपामुद्रा का संवाद है, जिसे फसल कटने के बाद किए जाने वाले प्रजनन सम्बन्धी अनुष्ठान से जोड़ा जा सकता है। इस सूक्त में स्पष्ट है कि संवाद का उद्देश्य न केवल जानकारी का आदान-प्रदान था, बल्कि यह सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठानों से भी जुड़ा हुआ था। इसी प्रकार, ऋग्वेद के 1.165 सूक्त में इन्द्र, अगस्त्य और मरुतों के बीच संवाद प्रस्तुत है। इस सूक्त में इन्द्र और मरुतों के मध्य एक विवाद दिखाई देता है क्योंकि वृत्रासुर के साथ युद्ध में मरुतों ने इन्द्र का समर्थन नहीं किया था। अगस्त्य इस विवाद में मध्यस्थ की भूमिका निभाते हैं और अंतत: दोनों पक्षों को संतुलित रूप में प्रस्तुत करते हैं। 1.170 सूक्त में भी इसी प्रकार का भाव दिखाई देता है, जिसमें अगस्त्य अंतत: इन्द्र और मरुतों की स्तुति करते हैं और इस संवाद का उद्देश्य सामंजस्य स्थापित करना प्रतीत होता है। प्रोफेसर मैक्समूलर के अनुसार, ऐसे सूक्त संभवत: यज्ञ या धार्मिक अनुष्ठानों में पढ़े या अभिनय किए जाते थे, जिसमें एक दल इन्द्र का और दूसरा दल मरुतों का अभिनय करता था। प्रोफेसर सिल्वा लेवी भी इस विचार का समर्थन करते हैं।

ऋग्वेद के 3.33 सूक्त में विश्वामित्र और नदियों के बीच संवाद देखने को मिलता है। इस सूक्त में चेतन विश्वामित्र अचेतन नदियों के साथ वार्तालाप करते हैं, जो एक प्रकार से नाट्यात्मक संवाद का रूप लेता है। इसी प्रकार, 4.42 सूक्त में इन्द्र और अन्य देव अपनी-अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए संवाद करते हैं और एक-दूसरे की बड़ाई करते हैं। 4.18 सूक्त में इन्द्र, अदिति और कामदेव के बीच विशेष प्रकार का संवाद मिलता है, जिसमें इन्द्र की अस्वाभाविक उत्पत्ति का वर्णन है।

ऋग्वेद का 7.33 सूक्त वशिष्ठ और उनके पुत्रों के संवाद को प्रस्तुत करता है, जबकि 7.100 सूक्त में नेम भार्गव नामक मुनि इन्द्र की स्तुति करते हैं और इन्द्र उनका उत्तर प्रसन्न होकर देते हैं। 10.28 सूक्त में इन्द्र, वसुक और वसुक की पत्नी के बीच संवाद देखने को मिलता है। 10.86 सूक्त में इन्द्र, इन्द्राणी और वृषाकपिका के मध्य विवाद वर्णित है, जिसमें प्रत्येक पक्ष अपने सिद्धांतों को निर्दोष सिद्ध करने का प्रयास करता है और दूसरे पक्ष के तर्कों में दोष खोजता है।

ऋग्वेद का 10.108 सूक्त मनोरंजक दृष्टि से विशेष है। इसमें सरमा नामक इन्द्र की कुतिया एक दूत के रूप में कार्य करती है और इन्द्र की गायों को चुराने वाले पनियों के पास जाकर उनसे वार्तालाप करती है। यह सूक्त केवल नाट्यात्मक ही नहीं, बल्कि यह उस समय के समाज में कुत्तों के प्रशिक्षण और चोरी का पता लगाने के प्राचीन प्रयोग को भी दर्शाता है। इस प्रकार, ऋग्वेद में संवादात्मक सूक्तों की उपस्थिति न केवल धार्मिक या दार्शनिक विचारों को प्रदर्शित करती है, बल्कि ये सूक्त नाट्य और अभिनय की प्रारंभिक संभावनाओं के भी साक्षी हैं।

आज हम जो नाटक और एकालाप, यानी मोनोलॉग के रूप में नाट्य देखते हैं, उनके मूल में भी कई वैदिक सूक्त विद्यमान हैं। ऋग्वेद का 10.119 सूक्त इसका स्पष्ट उदाहरण है, जिसमें इन्द्र सोमपान करके नशे में चूर होकर अपना गुणगान करते हैं। इसे आधुनिक नाट्यशास्त्रियों ने एकालाप नाटक का प्रारंभिक रूप माना है। ए. बी. कीथ के अनुसार, यह सूक्त उस कर्मकाण्ड का हिस्सा है जिसमें सोमपान

अनुष्ठान की समाप्ति पर एक पुरोहित इन्द्र की भूमिका ग्रहण करता है और एकालाप के माध्यम से सोमरस की शक्ति और महिमा का गुणगान करता है। कीथ इसे चोल जातियों के मधुपानोत्सव से तुलना करते हैं, जहाँ मधुपान के प्रभाव का प्रदर्शन करते हुए एक देवता प्रवेश करता है और उसके गुणगान का अभिनय एक गायक करता है।

ऋग्वेद का 10.34 सूक्त भी कीथ के अनुसार एकालाप नाट्य का रूप है। इसमें एक जुआरी अपने पासे के कारण हुई आपदाओं और पत्नी के नुकसान के लिए पश्चात्ताप करता है। इस सूक्त में नाटकीय तत्व स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं, क्योंकि नट उछलते और गिरते हुए पासों का अभिनय करते हैं।

वान श्रोएडर ने ऋग्वेद के 7.102 सूक्त (नण्डूक सूक्त) को भी नाटकीय रूप में स्वीकार किया है। उनका मानना है कि इस सूक्त को गाते समय ब्राह्मण तालाब में खड़े होकर नृत्य और गायन के साथ इसे प्रस्तुत करते होंगे। इसी प्रकार, 6.112 सूक्त में सोमरस निकालते हुए एक ब्राह्मण अन्य जीवधारियों के समान अपनी इच्छापूर्ति के लिए संरक्षण चाहता है। इस अवसर पर वनदेवता भी छिपकर नाचते और गाते हैं। श्रोएडर के अनुसार, प्राचीन काल में नृत्य, गीत और वाद्य एक साथ चलते थे। इसी कारण ऋषियों ने वैदिक संवादों का गायन और नर्तन के साथ अभिनय करना प्रारंभ किया। चूंकि यह प्रदर्शन यज्ञ और अनुष्ठानों से जुड़ा था, इसलिए इसमें अश्लीलता या अनैतिकता का कोई स्थान नहीं था, जैसा कि यूनानी या मैक्सिकन नाटकों में कभी-कभी देखा जाता है।

अथर्ववेद में केवल एक ऐसा सूक्त मिलता है जिसे संवाद-सूक्त के रूप में देखा जा सकता है। 5.11 सूक्त में ऋत्विज् अथर्वा देवता से गी प्राप्त करने की प्रार्थना करता है, किन्तु प्रारंभ में देवता उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करना चाहते। अंतत: ऋत्विज् की लगातार विनम्रता और अनुरोध पर वे उसकी प्रार्थना स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार यह सूक्त वैदिक संवाद का एक प्राचीन उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसमें नाट्यात्मक भाव और संवाद की स्पष्ट छवि मिलती है।

वास्तव में, वेदों में कई ऐसे संवाद-सूक्त हैं जिन्हें नाट्य के आरंभिक रूप के रूप में देखा जा सकता है। डॉ. हर्टल ने इस विषय पर विशेष ध्यान दिया है और कहा है कि वैदिक संवाद रहस्यात्मक रूपक, यानी वीजरूप में प्रस्तुत होते थे। उनके अनुसार, ये संवाद केवल पढ़े नहीं जाते थे, बल्कि इन्हें गाया भी जाता था। इस दृष्टि से वैदिक संवादों और कर्मकाण्ड में नाट्य का बीज स्पष्ट रूप से निहित है। ऋग्वेद के सुपर्णाध्याय में इस बीज का विकास दिखाई देता है, जिसका अनुकरण आज भी बंगाली जात्राओं में देखने को मिलता है।

संवाद-सूक्तों के अलावा वैदिक साहित्य में और भी कुछ ऐसे अंश हैं जिन्हें नाट्य का प्रारंभिक स्रोत माना जा सकता है। उदाहरण के लिए, शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता के पुरुषनेध प्रकरण में 'सूत', 'शैलूष' जैसे शब्द आते हैं, जो नाट्य की उपस्थिति का संकेत देते हैं। पं. सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार, इसका अर्थ यह है कि वैदिक काल में भी नाटक अपने पूर्ण विस्तार के साथ हमारे देश में विद्यमान था और इसका प्रयोग होता था। हालांकि, ए. बी. कीथ और डॉ. दासगुप्त इस व्याख्या से सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि 'शैलूष' शब्द का अर्थ अभिनेता नहीं, बल्कि अर्ध-गायक या नर्तक है।

डॉ. दशरथ ओझा ने अपने ग्रंथ 'हिन्दू नाटक: उद्भव और विकास' में वैदिक संवादों को नाटकों का मूल मानते हुए उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार, सोमयाग नामक यज्ञ-क्रिया में सोमरसिक इन्द्र

के अनुयायी, सोम बेचने वाले वनवासी, यजमान और अध्वर्यु के बीच संवाद होता था, जो नाट्यात्मक अभिनय का संकेत देता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वैदिक कर्मकाण्ड में अभिनय के तत्व विद्यमान थे, भले ही उनका उद्देश्य केवल धार्मिक फल की प्राप्ति था, न कि मनोरंजन।

ए. वी. कीथ भी इसी दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि वैदिक संवादों को छोड़ भी दें, तो कर्मकाण्ड में नाट्य के बीज स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। इसमें अभिनय का उद्देश्य केवल प्रदर्शन नहीं था, बल्कि किसी धार्मिक या चमत्कारक परिणाम को प्राप्त करना था। इस प्रकार, वैदिक संवाद और कर्मकाण्ड न केवल धार्मिक और दार्शनिक तत्त्व प्रस्तुत करते हैं, बल्कि भारतीय नाट्य-परम्परा के आरंभ और विकास में उनकी मौलिक भूमिका भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

हालाँकि ए. बी. कीथ ने वैदिक कर्मकाण्ड में अभिनय के तत्वों को नाटक का प्रारंभिक रूप मानने का प्रयास किया, उनका यह विचार कुछ हद तक भ्रामक प्रतीत होता है। वास्तव में, यजमान को इस अभिनय का कोई विशेष ध्यान या परिणाम नहीं होता था। अर्थात्, सोमक्रय की रीति केवल धार्मिक अनुष्ठान ही नहीं थी, बल्कि वह पूरी तरह से नाटकीय स्वरूप की थी, जिसमें कर्मकाण्ड के बीच मनोरंजन का भी समावेश था। इस प्रकार, यज्ञ और अनुष्ठान में उपस्थित अर्धनाटकीय दृश्य, संवाद और अभिनय न केवल धार्मिक कर्म का हिस्सा थे, बल्कि समाज और दर्शकों के मनोरंजन का साधन भी थे।

स्टेन कोनो ने इन तथ्यों को स्वीकार करते हुए इसे स्पष्ट रूप से व्यक्त किया है। उनके अनुसार, ''हम इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने के लिए बाध्य हैं कि शब्दों के आदान-प्रदान, एक-दूसरे पर अपशब्दों का प्रयोग और हल्के मारपीट जैसी अर्धनाटकीय घटनाएँ प्राचीन भारत में आम लोकमनोरंजन का हिस्सा थीं। इन घटनाओं के मुख्य तत्त्व स्पष्ट रूप से नृत्य, गीत और संगीत थे।'' इस दृष्टि से स्पष्ट होता है कि वैदिक कर्मकाण्ड में उपस्थित अर्धनाटकीय तत्त्व नाट्य के प्रादुर्भाव का मूल स्रोत थे।

निष्कर्षत: भारतीय नाट्य-परम्परा का आरंभ वैदिक साहित्य से माना जा सकता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद में अनेक संवाद-सूक्त और एकालाप विद्यमान हैं, जिनमें नाट्यात्मक भाव, गीत, अभिनय और संगीत के तत्त्व पाए जाते हैं। वैदिक कर्मकाण्डों में ये अर्धनाटकीय तत्त्व न केवल धार्मिक उद्देश्य पूरे करते थे, बल्कि दर्शकों का मनोरंजन भी करते थे। ए. बी. कीथ और डॉ. हर्टल ने इसे नाटक के मूल रूप के रूप में स्वीकार किया, जबकि स्टेन कोनो ने इन अर्धनाटकीय तत्वों को प्राचीन भारत में लोकमनोरंजन का आधार माना। इस प्रकार, वैदिक संवाद और कर्मकाण्ड भारतीय नाट्यशास्त्र के विकास का मूल आधार हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *भरत मुनि; नाट्यशास्त्र; संपादक: डॉ. रामकृष्ण काव्यतीर्थ; वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, 2012*
2. *पं. सीताराम चतुर्वेदी; भारतीय नाट्य परम्परा; लखनऊ: लोकभारती प्रकाशन, 1975*
3. *डॉ. दशरथ ओझा; हिन्दू नाटक: उद्भव और विकास; नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, 1980*

4. डॉ. रामविलास शर्मा; भारतीय संस्कृति और साहित्य; नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, 1984
5. वासुदेवशरण अग्रवाल; भारत की बौद्धिक परम्परा; वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, 1962
6. आचार्य भरत; नाट्यशास्त्र; वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2010
7. ए.बी. कीथ, संस्कृत नाटक; वाराणसी: मोतीलाल बनारसीदास, 1971
8. पं. सीताराम चतुर्वेदी; भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच; लखनऊ: लोकभारती प्रकाशन, 1964
9. यजुर्वेद संहिता; वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2008
10. डॉ. दशरथ ओझा; हिन्दी नाटक: उद्भव और विकास; नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, द्वितीय संस्करण, 1980
11. A. B. Keith; The Drama of Ancient India; Oxford : Clarendon Press, 1924
12. A. B. Keith; Vedic Index of Names and Subjects, Vol. I;(London : John Murray, 1912
13. Max Müller; History of Ancient Sanskrit Literature; London : Williams and Norgate, 1859
14. H. Oldenberg; The Religion of the Veda; London : Kegan Paul, Trench, Trübner & Co., 1894
15. Sylvain Levi; Le Theatre Indien; Paris : Émile Bouillon, 1890
16. Winternitz, M.; A History of Indian Literature, Vol. I; Calcutta : University of Calcutta, 1908
17. Hertel, J.; Die Ursprünge des indischen Dramas; Leipzig : Verlag von Veit & Comp., 1914
18. Sten Konow; On the Dramatic and Semi-Dramatic Elements in Ancient Indian Ritual; London : Royal Asiatic Society, 1921